जाति धर्म के लोग एक साथ हिस्सा लेते थे। आज बाजारवाद तथा पश्चिम के दबाव उसे संकीर्ण करने पर आमादा हैं। ऐसे बहुत से उत्सव जो हम मनाने के लिए अभ्यस्त हो गए हैं वे हमारी संस्कृति के अंग नहीं है फिर भी हम मनाते हैं। इस प्रक्रिया में हम, हमारा समाज अपनी जड़ों, विरासतों, संस्कृतियों से कटता जा रहा है। नयी पीढ़ी अपनी समृद्ध विरासत को जाने, भारतीय समाज की समरसता, सौहार्द का ध्यान रखे। अपने स्वर्णिम अतीत को भी जाने उससे गौरवान्वित हो तथा अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचाए। यह संगोष्ठी इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्देश्य

1. भाषा और समाज के अंत: संबंध को जानना
2. भाषा और संस्कृति के अंत: सूत्रों की पड़ताल करना
3. साहित्य, समाज और संस्कृति को जानना
4. राष्ट्रीय एकता में भाषा, समाज और संस्कृति की भूमिका को जानना

राष्ट्रीय संगोष्ठी के उप-विषय

1. भाषा और समाज का अत: संबंध
2. समाज और संस्कृति के अत:सूत्र
3. समाज और संस्कृति: कुछ प्रश्न
4. संसकृति और भाषा का संबंध
5. सत्ता, भाषा और समाज: टकराव और मिलन के बिन्दु
6. हाशिए का समाज: भाषा और संस्कृति
7. मीडिया: भाषा, समाज और संस्कृति
8. हिंदी सिनेमा आज: भाषा, समाज और संस्कृति
9. साहित्य, समाज और संस्कृति
10. राष्ट्रीय एकता: भाषा, समाज और संस्कृति

यात्रा व्यय तथा ठहरने की व्यवस्था

जो प्रतिभागी या विशिष्ट विद्वान स्थानीय नहीं है वे दूसरे शहर से आयेगें उनके लिए ठहरने की व्यवस्था संस्थान के अतिथि गृह तथा पीजी होस्टल में की जायेगी। राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लेने वाले प्रतिभागियों (जिनके आलेख स्वीकृत हैं) टिकट प्रस्तुत करने पर उन्हें परिषद के नियमानुसार 3 टायर एसी, यात्रा एवं महँगाई भत्ता आदि आरटीजीएस के द्वारा दिया जायेगा। विस्तृत जानकारी तथा पेपर स्वीकृति के बारे में हमारी वेबसाईट-www.ncert.nic.in देख सकते हैं।

सारांश और पूर्ण आलेख हिंदी फोंट कृतिदेव-10/युनीकोड में टंकण कराकर ई-मेल-lalncert@gmail.com पर शीघ्र भेजने की कृपा करें। प्रस्तुत किए गए आलेख शीघ्र ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित किए जाएँगें।

भाषा, समाज और संस्कृति

राष्ट्रीय संगोष्ठी के संरक्षक हैं:
प्रो.एच.के.सेनापति

निदेशक
एनसीईआरटी, नई दिल्ली

संयुक्त निदेशक (CIET)
प्रो. अमरेन्द्र बेहरा

अधिष्ठाता
प्रो. ए.के. श्रीवास्तव (R)
प्रो. सरोज यादव (A)

विभागाध्यक्ष
डॉ.संध्या सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भाषा शिक्षा विभाग

संयोजक
डॉ.लालचंद राम
भाषा शिक्षा विभाग
एनसीईआरटी, नई दिल्ली
मो. 9990070895, 8770391405
ई-मेल: lalncert@gmail.com

विशिष्ट संकाय
डॉ. के.सी.त्रिपाठी, प्रोफेसर (संस्कृत), डॉ. संध्या रानी साहू, प्रोफेसर (अंग्रेजी) डॉ. मोहम्मद फारूक़ अंसारी, प्रोफेसर (उर्दू), डॉ. डी.एच.खान, प्रोफेसर (उर्दू) डॉ. संजय कुमार सुमन, प्रोफेसर (हिंदी), डॉ. जतीन्द्र मोहन मिश्र, प्रोफेसर (संस्कृत), डॉ. प्रमोद कुमार दुबे, एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी), डॉ. आर.मेघनाथन, एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी), डॉ. चमनआरा खान, एसोसिएट प्रोफेसर (उर्दू) डॉ. मीनाक्षी खार, एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी), डॉ. नरेश कोहली, एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी), डॉ. नीलकंठ कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी), डॉ. संगीता शर्मा (संस्कृत)

महत्वपूर्ण तिथियाँ

सारांश और आलेख भेजने की तिथि: 20 फरवरी 2018
पूर्ण आलेख भेजने की अंतिम तिथि: 05 मार्च 2018
पत्र स्वीकृति की सूचना: 10 मार्च 2018
सेमिनार प्रस्तुतीकरण: 21-22 मार्च 2018

राष्ट्रीय संगोष्ठी

भाषा, समाज और संस्कृति

21-22 मार्च, 2018

स्थान
सम्मेलन कक्ष-202
सीआईईटी, एनसीईआरटी

आयोजक
भाषा शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING
SRI AUROBINDO MARG, NEW DELHI - 110 016

भाषा, समाज और संस्कृति
भाषा, समाज और संस्कृति

भाषाा, समाज और संस्कृति

यह सर्वविदित है कि भारत बहुभाषी देश है। 1971 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में 1652 भाषाओं की पहचान की गई है जो पाँच विभिन्न भाषा परिवारों के तहत आती हैं लेकिन व्यावहारिक स्थिति यह है कि प्रिंट मीडिया में 87 से अधिक भाषाएँ, रेडियो में 71, प्रशासन के स्तर पर 13 भाषाएँ प्रयुक्त हो रही हैं। दु:खद है कि मात्र 47 भाषाएँ ही विद्यालयों में पठन-पाठन के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती हैं। जबकि सैद्धान्तिक स्तर पर दोहराया जाता है कि प्राथमिक शिक्षा विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा में ही प्रदान की जाए।

समाज की प्रत्येक अवस्था में भाषा उसकी संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती है। संस्कृति में परिवर्तन के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है क्योंकि भाषा संस्कृति का अंग है। भाषा के कुछ तत्व बदलते हैं, उसमें आमूल परिवर्तन नहीं होता, वैसे ही संस्कृति में भी कुछ बदलाव तो दिखता है लेकिन मूलगामी परिवर्तन नहीं होता। भाषा किस स्तर की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती है, यह उसके बोलने वालों की आंतरिक समाज व्यवस्था पर निर्भर होता है।

भाषा में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है, इस बात को सभी भाषाविद् स्वीकार करते हैं। इस परिवर्तन की गति सदा एक सी नहीं रहती। भारत के इतिहास पर नजर डालें तो अरब, तुर्क, हूण, शक, पठान, मुगल तथा अंग्रेजों के शासन से जो भारतीय समाज में परिवर्तन हुआ उससे न केवल भाषा बल्कि संस्कृति में भी परिवर्तन हुआ। अरबी, फारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के बहुत सारे शब्द हमारी भाषा में रच-बस गए, हमारी भाषा और संस्कृति के अंग हो गए।

भाषा समूचे समाज की सम्पत्ति होती है। भाषा बहते पानी की तरह है। जिस तरह पानी का स्वभाव बहना-बहाना है। वह किसी की पहचान कर उसे छोड़ दे संभव नहीं। भाषा पर भी किसी एक व्यक्ति या समुदाय का नियंत्रण नहीं होता। इतिहास से यह पता चलता है कि उत्तरी भारत में लगभग छ: हजार साल पहले संस्कृत से मिलती-जुलती भाषाएँ बोली जाती थीं। इसके अलावा अन्य कुलों की भाषाएँ भी यहाँ बोली जाती थीं। ईसा के जन्म से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले गणों का विघटन और सामंती संबंधों का निर्माण आरंभ हुआ। गौतम बुद्ध के समय यहाँ अनेक मठ थे। उनमें परस्पर व्यवहार के लिए संस्कृत का उपयोग होता था। मगध सम्राटों के युग में भारतीय सामंतवाद अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। उस समय सामाजिक संगठन का मुख्य रूप थीं लघु जातियाँ। अपने-अपने जनपदों में ये लघु जातियाँ ब्रज, अवधी, मैथिली आदि बोलियाँ बोलती थीं।

भाषा बोलने वाले लोगों के समाज से बनती और विकसित होती है। जिनमें व्यापारी, विद्वान्, संस्कृति कर्मी, कला मर्मज्ञ, पूँजीपति, मजदूर, किसान, शहरी, मध्यवर्ग, व्यापार, फिल्म जगत सभी शामिल हैं। यही समाज उसको परिमार्जित और परिष्कृत करता रहता है। अपनी आवश्यकताओं, संदर्भों के अनुसार उसमें नये अर्थ भरता रहता है।

किंतु बाह्य विरोध या आसन्न संकट के साथ समाज का उच्च वर्ग जहाँ प्रतिरोधी भूमिका में नहीं होता है, वहीं अपनी जातीय संपत्ति की रक्षा करती हैं स्त्रियाँ और निम्न वर्ग। यही लोग अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा करते हैं। भाषा और जातीयता के अंहकार में पूँजीपति और सामंती विचारधारा के लोग शीघ्र समर्पण में विश्वास करते हैं। मजदूर वर्ग और जनसाधारण वर्ग ही समानता, सहयोग और परस्पर सम्मान की रक्षा करते हुए अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा में जी-जान लगा देते हैं।

संस्कृति शब्द बहुत व्यापक है, यह किसी व्यक्ति विशेष से पारिभाषित नहीं होती है। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का संबंध है वह अपने मूल्य, मान्यताओं और शाश्वत स्वरूप के कारण जानी जाती है और उसका मूल तत्व अक्षुण्ण बना हुआ है। हालाँकि संस्कृतियों की परंपरा में अति प्राचीन है। वेद, उपनिषद, पुराण, गीता आदि में जो ज्ञान की धारा बह रही थी वह आज भी हमारे देश में निरंतर प्रवाहित है। बुद्ध और महावीर की करुणा, अहिंसा, जीवों के प्रति दया, सद्भाव, भाईचारा, सर्वधर्म समभाव, प्रकृति, पर्यावरण आदि के प्रति मनुष्य का तादात्म्य आज तक इस देश में जीवित और जागृत है। मध्यकाल के दौरान निर्गुण और सगुण संतो की वाणी आजतक अपनी प्रासांगिकता और सार्थकता बनाये हुए है। कर्म की प्रधानता, श्रम का महत्व, संघर्ष और बेहतर रचने-करने का स्वप्न, आदर्श जीवनमूल्य बन गए हैं। रैदास, कबीर, तुलसी, मीरा, नामदेव, नानक आदि उसी संस्कृति के महान गायक रहे हैं। भाई-भाई का प्रेम, पिता-पुत्र, माँ-बेटा तथा जितने भी मानवीय रिश्ते जैसे माँ, चाची, ताई, मौसी, मामी, बुआ आदि आंटी नही हैं। इन सबके बीच मर्यादा अपने आप तय हो गई है क्योंकि इस तरह के चरित्र भारतीय समाज में उपस्थित होते रहे हैं जिनका विशेष मूल्य और महत्व है।

यवन, शक, यहूदी, कुशाण, हूण, तुर्क, अफगान, मुगल और अंग्रेज आदि विदेशियों के आक्रमण और शासन भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके क्योंकि भारत देश ही विचित्र है–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"

यहाँ सभी को अपना मानने, आश्रय देने, अतिथि देवोभव: का भाव सबको अपना बना लेता है। यह अचानक नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति के मूल में है। मो. इक़बाल ने ठीक ही कहा है–

सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्ताँ हमारा
यूनान-ओ-मिश्र-ओ-रोमाँ, सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी,नाम-ओ-निशाँ हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहाँ हमारा।

भारतीय संस्कृति की प्राणधारा निरंतर प्रवाहमान रही है तो उसके मूल में कुछ बुनियादी तत्व अवश्य रहें हैं उसमें प्रमुख है अध्यात्म की भावना। यही अध्यात्म सभी धर्म-धर्मांतरों, मत-संप्रदायों की मूल विशेषता रही है। यही वह प्रेरणादायी शक्ति रही है जिसके चलते अनेक धर्म, संप्रदाय, भाषा-भाषी, रीति-रिवाज, व्रत-त्यौहार यहाँ फलते-फूलते रहे। सर्वधर्म समभाव तथा वसुधैव कुटुम्बकम इसका मूल मंत्र था जिससे सभी लोगों के बीच समन्वय स्थापित करने में मदद करता रहा। 'सब हममें हम सबमें' तथा 'परहित सरिस धर्म नही भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई' की भारत की विविधवर्णी संस्कृति में एकत्व का निर्माण करती है। घनीभूत वेदना में सृजन की प्रेरणा भारतीय मनुष्य को उदात्त बनाती रही। तभी तो- *"भूखा रहकर भी आदमी/ अपने हिस्से का आकाश/ मुस्कुराते हुए ढोता है/ अपने देश की मिट्टी को/ आंख की पुतली समझता है।"*

भारत जैसा बहुभाषिक तथा संस्कृति बहुल समाज दुनिया में दुर्लभ है। भाषा एवं संस्कृति बहुलता हमारी ताकत है यही राष्ट्रीय एकता और अखंडता का प्राण तत्व भी। कोई भी भाषा किसी भी भाषा से कमतर नहीं है। भाषा बोलने वालों से ही उनका समाज और अस्तित्व बनता है। वहीं उनकी पहचान है। ऐसी स्थितियों में भारत में अधिकांश जनजातीय भाषाएँ मर रही हैं, उनके बोलने वाले मर रहे हैं। भाषाएँ नहीं रहेंगी तो उनका समाज कैसे बचेगा? उस भाषा में निर्मित ज्ञान सम्पदा कैसे बचेगी? फिर उनकी संस्कृति कैसे बचेगी? भाषा का मरना, समाज एवं संस्कृति का मरना है। यह हमारी चिंता होनी चाहिए। यह चिंता राष्ट्रीय चिंता का विषय है।

जनजातीय संस्कृति तभी बचेगी जब वह समाज बचेगा। वह समाज तब बचेगा जब उसके बोलने वाले लोग बचेंगे, उनकी-भाषा बचेगी। यह सर्वविदित है कि भाषा, समाज और संस्कृति एक-दूसरे से संयुक्त है। एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व कमज़ोर होगा। संस्कृति की रक्षा मूलत:समाज और भाषा की रक्षा है।

चूँकि, भाषा संस्कृति का रक्षक है और उसका अंग भी। संस्कृति के लिए आवश्यक नहीं कि आर्थिक व्यवस्था बदलने पर उसमें आमूल परिवर्तन हो जाय। प्रत्येक भाषा की अपनी ध्वनि, प्रकृति और भाव प्रकृति होती है। इसे उनकी सांस्कृतिक विशेषता जाननी चाहिए। भाषा में विकास और परिवर्तन के दो कारण हैं- बाह्य अंतर्विरोध और समाज की आंतरिक स्थिति। जब कोई विजित जाति अपनी भाषा के शब्दों को ठुकराए, अपने सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को ठुकराए, उसे छोड़ता-भूलता जाए और विजेता की भाषा और सांस्कृति को अपनाए, उसपर गर्व करे तो उसे गुलामी का प्रतीक माना जाना चाहिए।

हमारे यहाँ की संस्कृति में तीज, त्यौहार, व्रत, उत्सव आदि सामाजिक सौहार्द और समरसता की दृष्टि से मनाया जाता रहा है जो भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। दीपावली, दशहरा, होली, ईद, बैसाखी, नवरोज तथा क्रिसमस आदि त्यौहार मनाने की संस्कृति भारतीय संस्कृति है जिसमें सभी